

## स्मृतिकालिक समाज में धर्म की अवधारणा

### सारांश

भारतीय संस्कृति में धर्म की प्रधानता रही है। मानव जीवन को सुचारु रूप से संचालित करने और गन्तव्य तक पहुँचाने वाले जो कर्तव्य कर्म और आचरणीय नियम होते हैं, वे सभी हमें भारतीय संस्कृति में धर्म के अन्तर्गत दिखायी देते हैं। वस्तुतः मानव को सर्वोच्च लक्ष्य तक पहुँचाने में धर्म का महनीय योगदान है। यही कारण है कि वैदिक काल में धर्म को ग्राह्य बताया गया और अधर्म को निन्दनीय बताकर सचेत कर दिया गया। वैदिक संहिताएं धर्म की प्रतिस्थापना के लिए सर्वत्र बल देती हैं। अथर्ववेद में 'पृथ्वीसूक्त' के अन्तर्गत पृथ्वी धर्मादि द्वारा संरक्षित बताई गई।

**मुख्य शब्द** : धर्म, मनुस्मृति, सुव्यवस्था

**प्रस्तावना**

**धर्म की अवधारणा**

सत्यं ब्रह्म ऋतुमुग्रं दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति। अन्यत्र यह भी कहा गया है कि धर्म सम्पूर्ण विश्व का आधार है, धर्म में ही सबकुछ स्थित है, अतः धर्म सर्वोपरि है यथा

**धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा**

**धर्मं सर्वम् प्रतिष्ठितं तस्मात् धर्मं परमं वदन्ति।**

धर्म न केवल ब्रह्म प्राप्ति का साधनभूत तत्व है, बल्कि समाज को सुस्थिर तथा सुव्यवस्थित बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है। मनुस्मृति में धर्म के सन्दर्भ में विस्तार से बताया कि राग द्वेषादि विकृतियों से सर्वथा रहित ज्ञानी जनों के द्वारा जिसका सदा परिपालन किया जाता है तथा निर्मल मन के द्वारा जिसका सुप्रभाव अनुभूत किया जाता है, ऐसे मानव धर्म के स्वरूप को समझना आवश्यक है।

**विद्वद्भिः सेवितः सदिभः नित्यमद्वेषरागिभिः**

**हृदयेनाभ्यनुज्ञातो यो धर्मस्तं निबोधत।।**

धर्म के सुपरिणाम के विषय में मनुस्मृतिकार ने स्पष्ट कहा है कि

**श्रुतिस्मृत्युदितं धर्ममनुतिष्ठन् हि मानवः।**

**इह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्।।**

अर्थात् यदि मानव आचारवान तथा धर्मवान रहता है तो इस संसार में कीर्ति की प्राप्ति करता है, समाज में उसकी स्थिति प्रशंसनीय रहती है और मृत्यु के अनन्तर वह मुक्ति का अधिकारी है।

धर्म का यह सुप्रभाव ही है कि जीवन काल में तथा जीवन के उपरान्त भी धर्म से लाभान्वित होना सुनिश्चित है। मनुस्मृति ने धर्म को "ते सर्वार्थेष्वमीमांस्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्बभौ"। कहकर संशय अविश्वास तथा तर्क से परे रखते हुए मानवोपयोगी उद्घोषित किया है।

धर्म का सम्बन्ध आचरण से है। "धर्म चर" के द्वारा यही संदेश दिया गया कि धर्म को अपनाओं और अधर्म का परित्याग करो। धर्म आचरणीय है अतः धर्मपूर्वक जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर है। अधर्म आचरण को दूषित करता है, समाज विरोधी है, फलतः उससे सचेत रहना आवश्यक है।

धर्म शब्द की व्युत्पत्ति 'धृ' धातु से हुयी है। जिसका अर्थ है—धारण करना। धर्म का सीधा सम्बन्ध धारण करने से है। इसलिए "धारणात् धर्मः इत्याहुः" कहकर परिभाषित किया गया। धर्म मानव जीवन में धारणीय तो है ही, समग्र मानवता का संरक्षक एवं धारक तत्व भी है। ऐसे आचार और विचार जिनको धारण करना न केवल सामाजिक व्यवस्था के लिए आवश्यक है।

—वरन् व्यक्तिगत जीवन के लिए भी उत्कर्ष परक है, वे सभी वैदिक ग्रन्थों में व स्मृति ग्रन्थों में धर्म पद वाच्य है। 'आचारः परमो धर्मः' बताकर आचारवान बनने के लिए सहज रूप से प्रेरित किया गया। धर्म कोई कल्पनातीत तत्व नहीं अपितु जीवन को सार्थक एवं मोक्षाधिगम में सहायक



**कनक रानी**

एसोसिएट प्रोफेसर,  
संस्कृत विभाग,  
आर्य महिला स्नातकोत्तर  
महाविद्यालय,  
शाहजहांपुर

नियम-संयम की श्रंखला के रूप में दिखायी देता है। जीवन सदा धर्म पथ पर संचालित होता रहे, धर्मविमुख न हो इस दृष्टि से सावधान किया गया कि यदि मनुष्य धर्मपराङ्मुख हो जाता है तो वेद भी उसे पवित्र नहीं कर पाते –“आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः”। सदाचार का परित्याग अर्थात् दुराचार करने पर मनुष्य लोकनिन्दा को भर्त्सना को प्राप्त करता है। निश्चय ही यह चेतावनी धर्म की ओर उन्मुख करती है और अधर्म पराङ्मुख करती है—“दुराचारोहि पुरुषो लोके भवति निन्दितः”। लोकनिन्दा का भय मनुष्य को धर्मनिष्ठ बनाने में सहायक रहा। अन्यत्र पराशर स्मृति में धर्म को पालक माना तथा चारों वर्णों का संरक्षक तत्व कहा जो व्यक्ति आचारभ्रष्ट हो जाता है, वह धर्म पराङ्ग होकर लक्ष्यच्युत हो जाता है।

**चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालकः**

**आचारभ्रष्ट देहानां भवेद्धर्म पराङ्मुखः ॥**

इस तरह जीवन के प्रत्येक पक्ष को, समाज के प्रत्येक घटक को धर्म-कर्म से नियमित कर एक सुन्दर व्यवस्था दी गई।

**धर्म एवं हतोहन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः ।**

**तस्माद्धर्मो न हन्तव्यो मा नो धर्मो हतोऽवधीत् ॥**

आचाररूप कर्म की इस महत्ता के फलस्वरूप समाज अनुशासित व सुव्यवस्थित रहता है। कर्तव्य और धर्म में अभेद है। कर्तव्यनिष्ठा में आलस्य अथवा प्रमाद कदापि स्वीकार्य नहीं। धर्मविवर्जित सर्वथा अस्वीकार्य है, अतएव परित्याज्य है— “परित्यजेदर्थकामौ यदि स्याता धर्मविवर्जितौ” आलस्य मानव का शत्रु है, प्रगति विरोधी है। लक्ष्य घातक होने के फलस्वरूप इसका परित्याग करने का संदेश दिया गया और कर्तव्य के प्रति जागरूक रहने की अनुकरणीय प्रेरणा दी गई। समाज को धर्म नियंत्रित और मर्यादित रखने का अनुकरणीय तथा मनोवैज्ञानिक प्रयास स्मृति ग्रन्थों की अनुपम विशिष्टता कही जा सकती है। धर्म के सुपरिणाम सर्वत्र उल्लिखित है। भगवद्गीता में भी कहा गया है कि यदि मनुष्य धर्म की व्यवस्था का पालन करता हुआ समाज का प्रत्येक घटक अपने कर्तव्य से च्युत न हो तो समाज सदैव उन्नति को प्राप्त करता है।

**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः ॥**

गौतम स्मृति में भी धर्म को प्रमुखता को मानते हुए गहन अज्ञानता से मुक्ति में भी सहायक माना है—

**धर्मं सन् चिनुयात् सदा धर्मेण हि सहायेन**

**तमस्तरति दुस्तरम् ॥**

यह किसी मत अथवा समुदाय का घोटक नहीं जीवन का एक ढंग है, आचरण संहिता है जो समाज के किसी अंग या व्यक्ति के रूप में मनुष्य के कर्मों और कर्तव्यों को व्यवस्थित करता है और क्रमशः विकास लाता हुआ उसे मानवीय अस्तित्व के लक्ष्य तक पहुंचने के योग्य बनाता है। सम्भवतः इसी मान्यता से परासर स्मृति में “मनुष्याणां हितम् धर्म” कहकर मनुष्य के लिए हितकारी, मंगलकारी, अभ्युदयकारी धर्म की प्रतिष्ठापना की गई। याज्ञवल्क्य स्मृति में स्पष्ट किया गया है कि धर्मपूर्वक सुख की प्राप्ति की जा सकती है।

**धर्मादर्थः प्रभवति धर्मात् प्रभवते सुखम् ।**

**धर्मेण लभते सर्वः धर्मसारमिदं जगत् ॥**

स्मृतिकालिक समाज धर्ममूलक था, इहलौकिक और पारलौकिक उन्नति के आधारभूत तत्व धर्म से संरक्षित था। मनुस्मृति में धर्म को एक शाश्वत तत्व के रूप में स्वीकार किया गया, धर्म परिवर्तनीय है। यहां धर्म में परिवर्तन नहीं होता है। जो धर्मज्ञ है तथा वेदों का ज्ञाता समाज के राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र पर धर्म का प्रभाव रहा, यहाँ तक की जीवन के प्रत्येक पहलू को धर्मपूर्वक निर्धारित किया गया। तात्कालिक समाज में धर्म की प्राथमिकता को स्वीकार किया जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। भारतीय संस्कृति में जीवन का परम प्रयोजन है मोक्ष और स्मृति ग्रन्थों में प्रतिपादित धर्म समग्र मानवता को मोक्षाधिगम कराने के लिए कृतसंकल्प है। धर्म की एक सुस्पष्ट परिभाषा मनुस्मृतिकार ने दी कि

**श्रुतिः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः ।**

**एतच्चतुर्विधः प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥**

अर्थात् जो वेदानुमोदित है, जो स्मृति ग्रन्थ सम्मत है, जो सत्पुरुषों का आचरण है तथा जो अपने विशुद्ध मन को प्रिय लगे, वह सब धर्म है। धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध धर्म के दस लक्षण हैं—

**धृतिः क्षमा दमोस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**

**धी विद्यासत्यमक्रोधो दशकं लक्षणम् ॥**

जीवन को सही ढंग से चलाने के लिए ज्ञान की महती आवश्यकता है। ज्ञान के अभाव में गन्तव्य को प्राप्त करना संभव नहीं— “ऋते ज्ञानान् मुक्तिः”। ज्ञान का अक्षय भण्डार है— वैदिक संहिताएं। वेदानुमोदित स्मृतियां मनुष्य मात्र के लिए ज्ञानमय मार्ग प्रशस्त करती हैं। वेद स्मृति ग्रन्थों के साथ ही अपने आचरण से ज्ञानीजन सन्मार्ग प्रशस्त करते हैं — “महाजनो येन गतः स पन्थः”। धर्म के स्वरूप को जानने के लिए इससे अधिक सरल और स्वाभाविक क्या हो सकता है कि विशुद्ध आत्मा द्वारा अनुभूत स्वात्मप्रिय तथ्य ही धर्म के रूप में परिग्रहीत है—

**वेदोखिलो धर्ममूलम् स्मृतिशीले च तद्विदाम्**

**आचारश्चैव साधूनामात्मन स्तुष्टिरेव च ॥**

धर्म को व्यापक रूप में ग्रहीत किया गया स्मृतिकारों को संकुचित अर्थ अभिप्रेत नहीं। संसार के सम्यक् संचालन के लिए जिन नियमों की आवश्यकता है, वस्तुतः वे सब धर्म हैं।

**अहिसां सत्यवादश्य सत्यं शौचं दया क्षमा ।**

**वर्णिनां लिङ्गिनाच्चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥**

भारतीय संस्कृति के लक्ष्य पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष) में प्रथम स्थान धर्म का ही है। इसकी उपेक्षा सामाजिक व्यवस्था को विकृत कर सकती है। अतः “धर्मो न हन्तव्यो” कहकर धर्म की आवश्यकता तथा अपरिहार्यता की मान्यता दी गई। अर्थ और काम बहिर्दृष्टि प्रदान करते हैं, जबकि धर्म अंतर्दृष्टि। धर्म सम्मत अर्थ और काम निःश्रेयस में सहायक है। धर्म का त्याग सदैव निन्द्य माना गया, यदि अर्थ अर्जित किया जाए तो धर्म निर्देशित साधनों द्वारा और धर्मविहित सीमा तक।

धर्मपूर्वक अर्जित किया गया। अर्थ मोक्ष में साधक है, बाधक नहीं है। इसीलिए अध्यात्मवेत्ता दार्शनिक धर्मपूर्वक अर्थार्जन और अर्थव्यय पर बल देते हैं। स्मृतिकारों ने जीवन को सरल व सुगम बनाने के उद्देश्य

से भी दैनिक कार्यों को धर्म के रूप में परिभाषित किया। महर्षि हारीत ने सभी वर्णों के लिए कृषि कर्म को "सामान्य धर्म" के अन्तर्गत परिगणित किया सचमुच कृषि के अभाव में मानव जीवन के अस्तित्व को बचाए रखना दुष्कर है। यही विचार दृष्टिगत करते हुए दूरदर्शी स्मृतिकारों ने कृषिकर्म को धर्म की संज्ञा दी।

#### **कृषिस्तु सामान्य वर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते ।**

कोई भी समाज तब तक अनुकरणीय नहीं बन सकता जब तक उसमें रहने वाले लोग सम्यक् प्रकार से अपने कर्तव्यों का पालन न करते हों। सभी लोगों के द्वारा अपने-अपने कर्तव्यों की पूर्ति करने पर ही समाज की उन्नति होती है। यह तथ्य सर्वविदित ही है कि अच्छे विचार और अच्छे कर्म ही समाज को दिशा प्रदान करते हैं। निश्चय ही समाज को अग्रणी बनाने में आदर्शों की महती भूमिका है। दूरदर्शी स्मृतिकारों ने इस तथ्य को दृष्टिगत किया और अनुकरणीय व्यवस्था देने के लिए कर्तव्य रूपी धर्म के पालन का उद्देश्य दिया। इस विचारधारा ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर समाज को सुस्थिर बनाने में सहयोग किया। जहाँ मानव जीवन को सुशिक्षित बनाने का स्तुल्य प्रयास दिखायी देता है। वहीं समाज को भी उचित व्यवस्था देने का लक्ष्य परिलक्षित होता है। समाज के प्रति इस सकारात्मक एवं व्यापक दृष्टिकोण ने वैदिक काल के "कृष्वन्तो विश्वमार्यम्" के उद्घोष को चरितार्थ करने का प्रयत्न किया। स्पष्ट है कि स्मृतिकारों का मूल उद्देश्य धार्मिकता के प्रभाव में मानवता को अनुशासित, व्यवस्थित और मर्यादित करना रहा।

मनुस्मृति में धर्म से ही दृढ वृद्धि करने के लिए प्रेरित किया

#### **धर्मण दृढवृद्धावातिष्ठेव यत्नमुत्तमम् ।**

अनुचित द्रव्योपार्जन तथा दृढ संग्रह को निरादृत किया गया है। अन्यायपूर्वक अर्जित अर्थ की आपत्ति में भी वर्जना की गयी— अन्यायोपार्जित द्रव्यं आपधापिविवर्जयेत् । निश्चय ही धर्मपूर्वक अर्जित अर्थ ही जीवन के परम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति में सहायक कहा जा सकता है।

धर्म पूर्वक सम्पादित काम पितृऋण से मुक्ति दिलाने वाला है। अनियंत्रित अवस्था में काम मोक्ष प्राप्ति में बाधक होने के कारण अवांक्षणीय हैं काम का अर्थ 'इच्छा' (कामना) करने पर भी धर्मसम्मत कामना को ही उचित बताया गया, साथ ही धर्मविहीन कामना की भर्त्सना की गई। धर्मपूर्वक अर्थार्जन करते हुए व धर्मपूर्वक काम का संपादन करते हुए मानव अपनी जीवन यात्रा का सफल संचालन करता हुआ अभीष्ट गन्तव्य को प्राप्त करने में सफल हो जाता है।

"धर्मार्थावुच्यते श्रेयः" कहकर मनुस्मृति प्रणेता ने धर्म को श्रेयस् अर्थात् कल्याणकारी निर्देशित किया है। याज्ञवल्क्य स्मृतिकार ने भी धर्म, अर्थ एवं काम के चिन्तन को अपरित्याज्य स्वीकार किया है—

#### **ब्राह्मं मुहूर्ते उत्थाय चिन्तयेदात्मनो हितम् ।**

#### **धर्मार्थकामान् स्वेकाले यथाशक्तं न हापयेत् ।।**

इस प्रकार पुरुषार्थचतुष्टय में धर्म के द्वारा अर्थ और काम को साधन के रूप में स्वीकार करते हुए अंतिम अभीष्ट लक्ष्य मोक्ष का मार्ग प्रशस्त किया गया है। धर्म

शास्त्र के अन्तर्गत 'राजधर्म' का विवेचन होता रहा है। मनुस्मृतिकार ने भी राजधर्म पर चर्चा की। धर्मशास्त्र के शास्त्र के अन्तर्गत होने कारण राजधर्म का बहुविध विवेचन स्मृतिकारों ने किया और इसे तो प्रधान धर्म ही कह दिया।

#### **सर्वाविद्या राजधर्मेषु युक्ताः सर्वे लोका ।**

#### **राजधर्मे प्रतिष्ठाः सर्वधर्मो राजधर्मः प्रधानः ।।**

यदि राजदण्ड शिथिल हो जाएगा तो सभी मर्यादायें शिथिल हो जाएगी।

#### **दण्डः शास्ति प्रजाः दण्ड एवाभिरक्षति**

#### **दण्डः सुप्तेषु जागर्ति दण्डं धर्मः विदुर्बुधाः ।।**

वस्तुतः कर्तव्यों का पालन करने के लिए ही समाज के द्वारा लोकसंरक्षक राजा का पद सृजित किया जाता रहा

#### **स्वेस्वे धर्मे निविष्टानां सर्वेषामनुपूर्वशः ।**

#### **वर्णानामाश्रमाणाच्च राजासृष्टोअभिरक्षिता ।।**

औशनस स्मृति व नारद स्मृति में राजशासन, दण्ड विधान और राजनीति को भी धर्म के अन्तर्गत माना है।<sup>2</sup>

नैतिक आदर्श ही व्यक्ति को धर्मनिष्ठ बनाते हैं। शब्दान्तर में नैतिक आदर्शों को ही धर्म के लक्षणों में परिगणित कर लिया गया।

#### **अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।**

#### **एतं सामासिकं धर्मं चातुर्वर्ण्यं ब्रवीन्मनुः ।।**

स्मृतिग्रन्थों के परिशीलन से यह तथ्य सुस्पष्ट होता है कि मानव का मूल्यांकन आचार-विचार के आधार पर ही किया जाता रहा। स्मृतिकारों ने नैतिक गुणों को अति महत्व दिया और इनका पालन करने पर विशेष बल दिया। अहिंसा परमो धर्मः, 'सत्यं वद्' आदि नैतिक आदर्शों ने मानव जीवन को समुज्ज्वल बनाया तथा सामाजिक व्यवस्था को सुस्थिर बनाने में अतुलनीय योगदान दिया। उदाहरणार्थ अहिंसा के कारण व्यक्ति में दूसरों का अहित करने की भावना बलहीन हो जाती है और समाज हिंसा की त्रासदी से विमुक्त हो जाता है।

समाज को सुसंस्कारित करने के लिए संस्कारों का धर्मपूर्वक (विधिविहित) सम्पादन हेतु बल दिया। राजा के कर्तव्यों को भी राजधर्म के रूप में वर्णित किया तथा आश्रम व्यवस्था के अन्तर्गत चारों आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास) के करणीय कर्मों को भी धर्म ही कहा गया। वास्तव में धर्मशास्त्रों में चारों वर्णों तथा आश्रमों का सीधा सम्पर्क व्यावहारिक जीवन से रहा इसीलिए सामान्य धर्म की अपेक्षा वर्णाश्रम धर्म की विशद व्याख्या करना अधिक उचित समझा गया।

स्मृतिकारों ने जीवन को सरल व सुगम बनाने के उद्देश्य से भी दैनिक कार्यों को धर्म के रूप में परिभाषित किया। महर्षि हारीत ने सभी वर्णों के लिए कृषि कर्म को "सामान्य धर्म" के अन्तर्गत परिगणित किया। सचमुच कृषि के अभाव में मानव जीवन के अस्तित्व का बचाए रखना दुष्कर रहा यही विचार दृष्टिगत करते हुए दूरदर्शी स्मृतिकारों ने कृषि कर्म को धर्म की संज्ञा दी।

#### **कृषिस्तु सामान्य वर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते**

इसी प्रकार वशिष्ठ स्मृति में भी वर्णाश्रम धर्म के अतिरिक्त भी कुछ विशेष कर्म स्त्री धर्म आदि निर्दिष्ट है

#### **वर्णाश्रमेतराणां नो बूहि धर्मनिवेशतः ।**

अन्यत्र “न दानात्परमो धर्मः” कहकर दान को धर्म माना गया। स्मृतिकारों ने युगानुकूल धर्म की व्यवस्था की गई। वृक्ष लगाना, कूप खनन, तालाब बनाना भी धर्म है। मानव हित के लिए जितने भी कार्य किए जाए वे सभी धर्मरूपेण स्वीकार्य हैं— “चतुर्णां वर्णानामेष धर्मः सनातनः”।

याज्ञ धर्म की मिताक्षरा व्याख्या में धर्म के पांच भेद बताए गए।

**वर्णधर्म, आश्रमधर्म, वर्णश्रिमधर्मो,**

**गुण धर्मो निमित्त धर्म साधारण धर्मश्चेति ।।**

स्मृतिग्रन्थों में जो जीवनयात्रा की दार्शनिक अवधारणा की अभिव्यक्ति होती है, वह सभी धर्ममूलक है। अपना कर्तव्य करो, प्रलोभनों में मत पड़ो, परम् लक्ष्य को प्राप्त करो। यही धर्मग्रन्थों का संदेश है।

मनुष्य जीवन में कभी-कभी ऐसी विषम परिस्थिति भी आ जाती है, जब वह कर्म का पालन करने में कठिनाई का अनुभव करता है और जीवन रक्षा जैसी गंभीर समस्या आ जाती है, स्मृतिकारों ने उस परिस्थिति में भी अनुकूल और सहज व्यवस्था देने का प्रयास किया। बड़ी ही प्रचलित सूक्ति भी है — “आपद्काले मर्यादा नास्ति”। दुःखी, भयार्त, बुभुक्षित व्यक्ति जीवन को बचाने के लिए समाज की प्रतिकूल गंभीर स्थितियों से उबारने के लिए समाज सुधारकों द्वारा आवश्यक प्रयत्न किए गए जिन्हें स्मृतिकारों ने परिस्थितिवाश आपद् धर्म के रूप में वर्णन किया। यहां यह तथ्य ध्यातव्य है कि कभी कर्तव्य से सन्दर्भित अथवा सदाचार से संबंधित संशय उत्पन्न हो जाए, असंशय की स्थिति बन जाए तो सदा विद्वानों के आचरण और सद्ब्यवहार का अनुकरण करो, अनुसरण करो। मनु ने इस अप्रत्याशित स्थिति में भी धर्म का पथ दिखाया।

**“अथ यदि ते कर्मविचित्सा या वृत्तविचिकित्सा वा स्यात् ।**

**ते तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनः ।**

**युक्ताः आयुक्ताः अलूक्षा धर्मकार्याः स्युः ।**

**यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः ।।**

कहा जा सकता है कि स्मृतिग्रन्थों में मानव जीवन के समस्त कर्तव्य धर्म के रूप में स्वीकार किए गए। धर्म के माध्यम से मानव जीवन में भौतिकता एवं पारलौकिकता के बीच मनुजल सामन्जस्य स्थापित किया गया। “धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः” अर्थात् स्मृतिग्रन्थ धर्मशास्त्र है, फलतः यहां मानव जीवन को सर्वतोमुखी कल्याणोन्मुख करने का और तात्कालिक समाज को सुव्यवस्थित रखने का प्रयत्न किया गया। उल्लेखनीय है कि धर्म का परित्याग करने पर अथवा समाज विरोधी कृत्यों पर

दण्डात्मक विधान भी परिलक्षित होते हैं। अस्तु, यह निर्विवाद सत्य है कि स्मृतिकारों ने समाज को उचित दिशा देने के लिए धर्म का आश्रय लिया और भावी सन्तति के लिए उत्कृष्ट पथ प्रशस्त किया।

**उद्देश्य**

इस शोधपत्र का उद्देश्य है धर्म की महत्ता से सुपरिचित कराकर कर्तव्योन्मुख अथवा धर्मोन्मुख करना।

**निष्कर्ष**

स्मृतिकालिक समाज में कर्म की अवधारणा शोधपत्र यह संदेश प्रस्तुत करता है कि समाज में धर्म की अपरिहार्यता पर बल देना तथा अधर्म से विरत करता समाज की सुव्यवस्था के लिए आवश्यक है। मनोवैज्ञानिक आधार पर सामाजिक व्यवस्था बनाने का स्मृतिकारों का यह प्रयास अनुकरणीय है।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

1. पृथ्वी सूक्त/12/1
2. मनु./2/1
3. मनु./2/9
4. मनु./2/10
5. पराषर/1/137
6. मनु./8/15
7. मनु./2/4
8. गीता/18/45
9. गौतम स्मृति/11/35
10. (याज्ञवल्क्य स्मृति/1/13)
11. मनु./2/10
12. मनु./8/15
13. मनुस्मृति
14. मनु./1/108
15. वृद्धहारीत स्मृति 4/172
16. मनु./9/333
17. वृद्धहारीत स्मृति/4/166
18. (याज्ञवल्क्यस्मृति/1/115)
19. मनु./10/165
20. मनु./7/18
21. दृष्टव्य नारदीय स्मृति/1/1
22. वृद्ध हरीतस्मृति 4/172
23. वशिष्ठ स्मृति 5/1/3
24. याज्ञवल्क्यस्मृति/1/1
25. तैत्तिरीयोपनिषद्/एकादश अनुवाक